



Date:09-05-24

Giving primacy to human development

M. Suresh Babu, [is Director, Madras Institute of Development Studies.]

The promise of development has emerged as a rallying point for political parties for the elections. Taking stock of the achievements of the past few years, as portrayed in the Human Development Report, underscores the task ahead and the need for a clear strategy for embarking on a long journey.

A poor ranking on HDI

Two recent reports reveal some important facets of India's development. First, the Human Development Report 2023-24, published by the United Nations Development Programme, takes a comparative perspective and maps the achievements in the area of human development. Second, a paper published by the World Inequality Lab in March 2024 provides long-term trends in income and wealth inequality in India between 1922 and 2023. These reports do not reveal very encouraging trends on both fronts and can be used for future course corrections. More importantly, the evidence published is a significant guidepost for the forthcoming government, if it is to advance human capabilities and enhance the welfare of citizens, which are agendas of the major parties.

India ranked 134 out of 193 countries in the UN Human Development Index (HDI) in 2022, which was an improvement compared to 2021, when it ranked 135 out of 192 countries. This one-point increase can be attributed to a marginal increase in HDI value to 0.644 in 2022 from 0.633 in 2021. This places India in the medium human development category. Between 1990 and 2022, India witnessed an increase in HDI value by 48.4%, that is, from 0.434 in 1990 to 0.644 in 2022.

However, even though India moved up a rank compared to 2021, it still fell behind Bhutan, Bangladesh, Sri Lanka, and China. The medium human development category of countries includes Myanmar, Ghana, Kenya, Congo and Angola. The index on which India registered an improvement is the Gender Inequality Index. In 2022, India was ranked 108 out of 193 countries, while in 2021, it ranked 122 out of 191 countries. However, India also has one of the largest gender gaps in its labour force participation rate as there exists a 47.8% difference between women (28.3%) and men (76.1%).

The Report raises concerns on rising inequality and its implications for advancing human development. Inequality between countries at the upper and lower ends of the HDI started to increase each year since 2020. This divergence is compounded by substantial economic concentration, as almost 40% of the global trade in goods is concentrated in three or fewer countries. Further, in 2021, the market capitalisation of each of the three largest technology companies surpassed the GDP of more than 90% of countries that year. The ramification of increased inequality is discussed in the Report, which states, "The share of people reporting

having very high control over their lives is low and relatively equal for the bottom 50 percent of the population, but rises with income for deciles 6 and above. Thus, income inequalities, which often intersect and are associated with other inequalities in human development, shape agency.” That is, agency increases as income grows for the bottom 50% of the distribution.

When adjusted for inequality, India’s loss in HDI is 31.1%, which is higher than that of Sri Lanka, Bangladesh, Nepal and Pakistan.

Widening inequality

The World Inequality Lab study shows that the bottom 50% were getting only 15% of India’s national income in 2022-23. According to the study, “The top 1% earn on average 5.3 million, 23 times the average Indian (INR 0.23 million). Average incomes for the bottom 50% and the middle 40% stood at INR 71,000 (0.3 times national average) and INR 1,65,000 (0.7 times national average) respectively. At the very top of the distribution, the richest 10,000 individuals (of 920 million Indian adults) earn on average INR 480 million (2,069 times the average Indian)”. This stark income inequality in India has important implications on the aggregate demand and consumption and on human welfare. The real growth rate of incomes at each percentile of the income distribution shows that growth for the top decile has been significantly higher than the rest of the population. Within the top 10%, growth rates rise with rank indicating that those at the very top benefited much more than the others. Interestingly, during 2014-2022, the incomes of the middle 40% of the income distribution seem to have grown slower than the bottom 50%. This skewed income distribution and growth of incomes of the higher percentiles indicate a forthcoming possibility of the reduction in the size of the ‘middle class’. When growth gets very concentrated at the top, the pace of economic polarisation accelerates eventually resulting in the emergence of two classes, the haves and have-nots.

Household debt levels in India reached a record high of 40% of GDP by December 2023, and the net financial savings plunged to 5.2% of the GDP, according to a recent report. A breakup of household debt shows that unsecured personal loans have experienced the most rapid growth, followed by secured debt, agricultural loans, and business loans. Annual borrowings of households surged to 5.8% of GDP in 2022-23, the second-highest level in independent India. Given low levels of human development, high levels of inequality, low savings and high debt, it is time to think about an alternate growth strategy which accords primacy to human development and convert it as a route to accelerate growth. This needs political will and thinking beyond short-term electoral gains. As a first step towards this, the narrative of development needs to be recast.



दैनिक भास्कर

Date:09-05-24

निर्यात - नीति दीर्घकालिक बनाने पर ध्यान देना होगा

संपादकीय



आम चुनाव के बीच प्याज के निर्यात पर पांच माह से लगा प्रतिबन्ध कुछ शर्तों के साथ हटाने का फैसला एक बार फिर नीतिगत ऊहापोह दर्शाता है। वैश्वीकरण के दौर में कोई भी देश बगैर निर्यात बढ़ाए विकास नहीं कर सकता। चूंकि भारत में आज भी 60% लोग कृषि से जुड़े हैं और 45-48 प्रतिशत श्रम-शक्ति मजबूरन इसी क्षेत्र पर बोझ बनी है लिहाजा कृषि और श्रम - बहुल उद्योगों के उत्पादों का निर्यात ही बेरोजगारी और कृषि संकट से बचाने का एक मात्र तरीका है। लेकिन अगर नीतियां महंगाई और

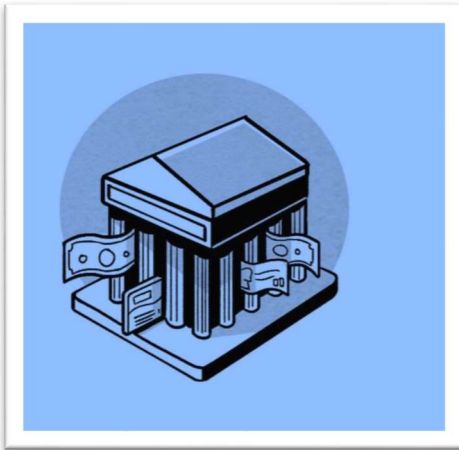
सरकार की इमेज के विपरीत रिश्ते के हिसाब से बनेंगी तो उत्पादनकर्ता न तो ज्यादा उत्पादन के लिए तत्पर होकर निवेश करेगा, ना ही लागत कम करने के लिए अपेक्षित तकनीकी और विज्ञान के प्रयोग के लिए प्रेरित होगा। गेहूं, चावल और चीनी का निर्यात पिछले एक-दो वर्षों से बाधित है, क्योंकि चुनाव काल में महंगाई किसी भी सरकार को अलोकप्रिय बना सकती है। लेकिन थोड़ा गहराई से सोचकर अगर नीतियां उत्पादन बढ़ाने, लागत कम करने और श्रम-बहुल उद्योगों को अलग से प्रोन्नत करने की दीर्घकालिक योजना बने तो सरकार का महंगाई का खौफ भी जाता रहेगा साथ ही विश्व बाजार का भरोसा बढ़ेगा और देश मार्केट लीडर बन सकेगा। देश की निर्यात नीति उद्योगों की प्रकृति के अनुरूप और दीर्घकालिक होनी चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:09-05-24

भारत से क्यों गईं विदेशी वित्तीय कंपनियां ?

देवाशिष बसु, (लेखक मनीलाइफडॉटइन के संपादक और मनीलाइफ फाउंडेशन में ट्रस्टी हैं)



सन 1992 के प्रतिभूति घोटाले के बाद कई विदेशी बैंकों ने जो अहंकार से भरी चुटकियां लीं और उत्तर दिए उनमें से एक यह भी था, 'अगर आप घर का मुख्य द्वार खुला रखेंगे तो आपके घर में चोरी होने की आशंका है।'

यह टिप्पणी सिटी बैंक के एक काउन्सिलर ने की थी। वह विदेशी बैंकों द्वारा एक अपारदर्शी सरकारी प्रतिभूति बाजार में सरकारी बैंकों को धोखा देकर मोटा मुनाफा कमाने को उचित ठहरा रहे थे।

भारतीय ऋण बाजार की छोटी सी दुनिया के बाहर उनका ट्रेजरी संचालन एक प्रकार से गुमनाम था लेकिन सिटी बैंक 1990 के दशक के आरंभ में भी एक प्रमुख खुदरा वित्तीय सेवा ब्रांड था जिसने क्रेडिट कार्ड से लेकर उपभोक्ता ऋण

तक खुदरा वित्त की गति निर्धारित की।

आईसीआईसीआई बैंक उस समय तक एक डेवलपमेंट-फाइनेंस संस्थान था, कोटक महिंद्रा बैंक और ऐक्सिस बैंक तब अस्तित्व में ही नहीं थे और सन 1994 में स्थापित हुए एचडीएफसी बैंक का संचालन भी सिटी बैंक से निकले एक व्यक्ति के हाथों में था।

करीब 30 वर्ष बाद मार्च 2023 में उसी सिटी बैंक ने अपना खुदरा कारोबार ऐक्सिस बैंक को बेच दिया और वह भारत के खुदरा बैंकिंग कारोबार से बाहर निकल गया। यह अपनी तरह का इकलौता मामला नहीं था। वर्षों के दौरान भारत में विदेशी बैंकों की मौजूदगी लगभग न के बराबर रह गई है।

देश का सबसे बड़ा विदेशी बैंक स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक है जिसकी 42 शहरों में केवल 100 शाखाएं हैं। एचएसबीसी की केवल 26 शाखाएं हैं। 38 अन्य विदेशी बैंकों की मौजूदगी नगण्य है। अकेले एचडीएफसी बैंक की 8,000 से अधिक शाखाएं हैं। सबसे बड़े वैश्विक बैंक मसलन जेपी मॉर्गन चेज, बैंक ऑफ अमेरिका, मित्सुबिशी यूएफजे और बीएनपी पारिबा आदि या तो भारत में हैं ही नहीं या फिर उनकी उपस्थिति बहुत मामूली है।

भारत के शीर्ष बैंक हैं भारतीय स्टेट बैंक, ऐक्सिस बैंक, आईसीआईसीआई बैंक, एचडीएफसी बैंक और कोटक महिंद्रा बैंक। म्युचुअल फंड की कहानी भी ऐसी ही है। शीर्ष 20 म्युचुअल फंड में से बहुत कम में विदेशी संयुक्त साझेदार हैं और उनकी भी भूमिका बहुत सीमित है।

अधिकांश फंड पूरी तरह भारतीय स्वामित्व वाले हैं। शीर्ष 10 में इकलौती विदेशी परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी निप्पॉन इंडिया है। सबसे बड़े अमेरिकी म्युचुअल फंड भारत में नहीं हैं। मॉर्गन स्टैनली और फिडेलिटी ने भारत से कारोबार समेट लिया और टेंपलटन वृद्धि के लिए संघर्ष कर रही है।

बीमा क्षेत्र का मामला थोड़ा अलग है जहां कई विदेशी कंपनियां संयुक्त उपक्रम में साझेदार हैं क्योंकि यह कारोबार थोड़ा अलग प्रकृति का है। परंतु इन पर भी भारतीय प्रबंधन का नियंत्रण है। भारतीय जीवन बीमा निगम जो कि भारत सरकार की कंपनी है, वह अभी भी जीवन बीमा कारोबार पर पूरा दबदबा रखती है।

यह सब 1990 के दशक के शुरुआती दिनों से एकदम अलग है जब भारतीय नीति निर्माता सतर्क थे और एक तरफ घरेलू हितों और दूसरी ओर अमेरिकी व्यापारिक प्रतिनिधियों के राजनयिक दबाव के बीच संतुलन साधने का प्रयास कर रहे थे। ऐसा इसलिए ताकि अमेरिकी वित्तीय कंपनियों का भारत में सहज प्रवेश सुनिश्चित किया जा सके।

मीडिया में इस बारे में खूब लिखा गया कि कैसे आकांक्षी भारतीय मध्य वर्ग (उस समय करीब 20 करोड़) जो आर्थिक उदारीकरण से लाभान्वित हो रहा था, उसे खुदरा ऋण, बीमा और म्युचुअल फंड जैसे निवेश उत्पादों की जरूरत पड़ने वाली थी।

भारतीयों को इन्हें बेचने के लिए अमेरिकी कंपनियों से बेहतर कौन होगा जिनके बारे में कहा जाता है कि उनके उत्पाद बेहतर हैं और निवेश में उनकी विशेषज्ञता है। विश्व व्यापार संगठन में कई दौर की वार्ताएं इस विषय पर केंद्रित रहीं कि उभरते बाजारों को विकसित देशों की सेवाओं (पढ़ें वॉल स्ट्रीट) के लिए खोला जाए। वाम रुझान वाले राजनेता और अकादमिक जगत के लोगों ने नवउपनिवेशवाद का डर दिखाया। परंतु हुआ एकदम उलटा।

सन 1993-94 में जब छह निजी म्युचुअल फंड को लाइसेंस दिया गया था तब उनमें से कई में विदेशी साझेदार थे। बाद में और विदेशी म्युचुअल फंड भारत में आए लेकिन उनमें से शायद ही कोई अपने मूल स्वरूप में नजर आया।

पायनियर, ब्लैकरॉक, अलायंस कैपिटल, सन एफएंडसी, मॉर्गन स्टैनली, जार्डइन फ्लेमिंग, जेपी मॉर्गन और गोल्डमैन सैक्स आदि ऐसे फंड हैं जो यहां से चले गए। इसके विपरीत भारतीय फंड कुछ ऐसे विदेशी साझेदारों के साथ बने रहे जो सक्रिय नहीं हैं। जेएम फाइनेंशियल, डीएसपी, आदित्य बिड़ला, श्रीराम आदि इसके उदाहरण हैं।

लाखों भारतीय इस रुझान को भारतीय उद्यमियों की महानता के प्रमाण के रूप में देखेंगे। यह सही है कि भारतीय उद्यमियों और प्रबंधकों ने बहुत अधिक प्रतिभा और क्रियान्वयन कौशल दिखाया है लेकिन विदेशी वित्तीय कंपनियों की भारत छोड़ने की नीति की वजह अलग है।

साफ कहें तो सन 1990 के दशक के मध्य में भारतीय मध्य वर्ग को लेकर जो भी अनुमान लगाए गए थे वे गलत साबित हुए। मध्य वर्ग की समृद्धि इस गति से नहीं बढ़ी कि विदेशी कारोबार उसका लाभ ले सकें। ऐसा भारतीय अर्थव्यवस्था के कुप्रबंधन की वजह से हुआ।

उत्पादकता कमजोर बनी रही, भ्रष्टाचार और कर दरें ऊंची बनी रहीं और सांठगांठ वाले पूंजीवाद ने 2000 के दशक के मध्य में बुनियादी वृद्धि को नुकसान पहुंचाया। परिणामस्वरूप सरकारी बैंकों का फंसा हुआ कर्ज 20 लाख करोड़ रुपये से अधिक हो गया।

2005 से 2008 के बीच समृद्धि में सुधार विशुद्ध रूप से तमाम भूभागों में वैश्विक तेजी की बदौलत हुआ। इससे कई परिसंपत्तियों की कीमतें बढ़ीं और वित्तीय सेवाओं में अल्पकालिक तेजी आई। परंतु वैश्विक वित्तीय संकट ने 2008 में भारत पर भी असर डाला और हम एक बार फिर दशक भर के संघर्ष में उलझ गए।

विदेशी कंपनियां वैश्विक वित्तीय संकट से बुरी तरह कमजोर पड़ चुकी थीं और उन्होंने बाहर निकलना शुरू कर दिया। भारतीय कंपनियों के पास ऐसा विकल्प नहीं था। उन्होंने समय बिताया और धीरे-धीरे बाजार हिस्सेदारी हासिल की। इसलिए जब ग्राहकों को डिजिटल बनाने जैसे उथलपुथल मचाने वाले अवसर आए तो घरेलू बैंकों की तैयारी बेहतर थी।

इसी प्रकार जब कोविड के बाद शेयर बाजार ने गति पकड़ी तो घरेलू म्युचुअल फंड और ब्रोकरेज फर्म तेजी से विकसित हुए। वित्तीय क्षेत्र में भारतीय कंपनियां स्पष्ट विजेता बनकर उभरीं जबकि विदेशी कंपनियां पिछड़ गईं। ध्यान रहे अन्य क्षेत्रों में ऐसा नहीं हुआ। उदाहरण के लिए विदेशी कंपनियों के व्यक्तिगत उत्पाद बने रहे। उनकी मजबूत उपस्थिति बरकरार है।

तय जिम्मेदारी को निभाएं

संपादकीय

भ्रामक विज्ञापनों की रोकथाम के लिए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि प्रख्यात व सार्वजनिक हस्तियों को जिम्मेदार व्यवहार करना चाहिए। अदालत निर्देश दिया कि विज्ञापन जारी करने की अनुमति से पहले केबल टेलीविजन नेटवर्क नियम, 1994 के अनुसार, विज्ञापनदाताओं से स्वघोषणापत्र हासिल किया जाए। इस कानून का नियम 7 विज्ञापन संहिता का प्रावधान करता है। जिसमें कहा गया है कि विज्ञापन देश के कानूनों के अनुरूप बनाए जाने चाहिए। अदालत पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड द्वारा भ्रामक विज्ञापनों से जुड़े मामले पर सुनवाई कर रही है। ये विज्ञापन निषिद्ध किए जा चुके हैं। पीठ ने संबद्ध केंद्रीय मंत्रालयों को भी इन भ्रामक विज्ञापनों व केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण द्वारा की गई या प्रस्तावित कार्रवाई से अवगत कराने को भी कहा। प्रचार व विज्ञापन उपभोक्ता को प्रभावित करने में महती भूमिका निभाते हैं। उस पर जब यह किसी प्रख्यात या सार्वजनिक शख्सियत द्वारा किया जा रहा हो तो आम जनता को खास तौर पर प्रभावित करता है। इस मामले में तो कोविड टीकाकरण व आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को सीधा निशाना बनाया गया था जिस पर इंडियन मेडिकल एसोसिएशन ने याचिका दायर की जिस पर सुनवाई चल रही है। इसमें संदेह नहीं कि लाभ के लोभ में कंपनियां भ्रामक प्रचार द्वारा सालों-साल जनता को बरगलाती रहती हैं। संबंधित मंत्रालय व विभाग इनके प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने से मुंह फेर लेते हैं। निराधार दावों, अतिरंजित बातों, छद्म दावों व अनुचित सूचना वाले तथा असुरक्षित उत्पादों से उपभोक्ताओं को प्रभावित कर रहे तमाम विज्ञापन अभी भी बेधड़क प्रकाशित/प्रचारित हो रहे हैं जो बच्चों के कोमल मन को बुरी तरह प्रभावित कर रहे हैं, युवाओं को दिग्भ्रमित व बुजुर्गों को भ्रमित कर रहे हैं। नियमों की अवहेलना करते हुए नामदार शख्सियत धन के लोभ में इनका बेतहाशा प्रचार करती हैं जिनके आधार पर कहना ज्यादाती नहीं होगा कि वे उपभोक्ताओं के अधिकारों को तरजीह देने को राजी नहीं। ऐसा सिर्फ इसीलिए हो रहा है क्योंकि समूची व्यवस्था अपनी जिम्मेदारियों के प्रति घोर लापरवाही बरतती है। बात अकेले पतंजलि की नहीं है। इसे उदाहरण मान कर संबंधित मंत्रालयों व विभागों को सतर्क हो जाना चाहिए न कि एक-एक विज्ञापन को लेकर अदालतों का दरवाजा खटखटाने वालों के इंतजार में बैठे रहना चाहिए।

विमान सेवाओं पर आए दिन मंडराते संकट के बादल

सरस चंद्र त्रिपाठी, (पूर्व मेजर व विमानन विशेषज्ञ)

अभी ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, जब विस्तारा एयरलाइन की एक के बाद दूसरी उड़ानें रद्द हो रही थीं। अब एअर इंडिया एक्सप्रेस की 70 से अधिक उड़ानें इसलिए रोकनी पड़ीं, क्योंकि मंगलवार की देर रात से उसके कू मेंबर अचानक बीमार हो गए। यह बीमारी दरअसल विरोध जताने का उनका एक तरीका है। वे एअर इंडिया एक्सप्रेस और एअर इंडिया के

विलय के खिलाफ हैं। उनका मानना है कि इससे उनके वेतन-भत्ते पर व्यापक असर पड़ सकता है। विस्तारा के साथ भी यही मामला था, एअर इंडिया के साथ उसके विलय को लेकर आपत्तियां हैं। हालांकि, एअर इंडिया एक्सप्रेस ने ऑपरेशनल कारणों से सेवाएं रद्द होने की बात कही है।

असल में, जब से टाटा समूह ने एअर इंडिया को अपने अधीन लिया है, तब से किसी न किसी वजह से यह समूह सुर्खियों में है। ताजा घटनाक्रम में घरेलू ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय उड़ानों को भी रद्द करना पड़ा। इस प्रकार जब अचानक उड़ानें रद्द होती हैं, तो अनेक लोगों की नौकरियों पर बन आ सकती हैं, कुछ लोगों तक जरूरी इलाज नहीं पहुंच सकता है और कुछ मनोरंजन या अपने अन्य उद्देश्यों से दूर हो सकते हैं। यानी, जीवन-मरण के प्रश्नों से लेकर पर्यटन शादी, नौकरी तक के मामले इससे जुड़े हो सकते हैं। यही कारण है कि उड़ानों का रद्द होना निजी ही नहीं, राष्ट्र के लिए भी नुकसानदेह होता है।

संगठनात्मक दृष्टि से टाटा समूह के पास इस समय चार एयरलाइंस हैं, जिनमें एअर इंडिया को उसने भारत सरकार से खरीदा है। इसके अलावा, उसके पास विस्तारा, एअर इंडिया एक्सप्रेस और एयर इंडिया एक्सप्रेस कनेक्ट (एअर एशिया) है। टाटा ने इन चारों सेवाओं के आपस में विलय की योजना बनाई है, लेकिन कर्मचारियों, पायलटों व उनकी यूनियनों के साथ प्रबंधन के टकराव के कारण यह कार्य काफी कठिन होता जा रहा है। इसमें विस्तारा एयरलाइन को प्रीमियम सेवा माना जाता है और उसके कर्मियों का वेतन काफी अच्छा है। जबकि, एअर एशिया की हालत काफी खराब है, इसलिए उसके कर्मियों के वेतन-भत्ते काफी कम हैं। दिक्कत यह है कि जब कंपनियों का विलय होता है, तो तमाम स्तरों पर समानता का प्रयास किया जाता है। टाटा की मुश्किलों की यही जड़ है। जिनको उंचा वेतन मिलता है, उनको वेतन-कटौती का डर सता रहा है, इसलिए विरोध की आवाजें उठ रही हैं। विमानन कंपनी और सरकार इस मसले को सुलझाने का प्रयास कर रही हैं, लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि ऐसे किसी घटनाक्रम में यात्रियों को परेशानी नहीं होनी चाहिए, लेकिन यहां इसके उलट ही हो रहा है। ऐसे में, कोई यात्री आखिर क्या करे? इसके लिए नागरिक उड्डयन महानिदेशक ने कुछ दिशा-निर्देश जारी किए हैं। मसलन, यदि दो घंटे के अंदर यात्री चाहे, तो दूसरी फ्लाइट में अपने गंतव्य के लिए टिकट ले सकता है। इसी तरह, विमानन कंपनी का भी यह फर्ज है कि वह अगली फ्लाइट में यात्री को जगह देने का प्रयास करे। दूसरा, यदि यह संभव नहीं है, तो यात्रियों के लिए भोजन-ठहरने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए और किसी दूसरी फ्लाइट से जल्द ही उनको गंतव्य की ओर भेजना चाहिए या पैसे रिफंड का विकल्प उनको देना चाहिए। यदि यात्री रिफंड लेता है, तो उसे दोगुना रिफंड का प्रावधान है, इसलिए अधिकांश विमानन कंपनियां यात्रियों को किसी दूसरे विमान से ही भेजने का प्रयास करती हैं।

ताजा घटनाक्रम बताता है कि भारत में विमानन उद्योग अब भी परिपक्व नहीं हो सका है। ऐसे सामूहिक रूप से बीमार हो जाने के विरुद्ध सरकार को कानून बनाना चाहिए। पायलटों, बैकअप स्टाफ की कम संख्या, सीमित बुनियादी ढांचे आदि के कारण भारत की ज्यादातर बड़ी विमानन कंपनियां तनाव में काम कर रही हैं, जिस कारण उड़ानों के अचानक रद्द होने या उनमें अघोषित देरी जैसी समस्याओं से यात्री जूझते रहते हैं। यह स्थिति तब और गंभीर नजर आती है, जब आंकड़े बताते हैं कि देश की शीर्ष पांच विमानन कंपनियों में से चार हर साल करोड़ों रुपये का घाटा सह रही हैं। इसका अर्थ है कि पूरे विमानन उद्योग में ही व्यापक सुधार की तरफ हमें बढ़ना होगा। उड्डयन क्षेत्र में विश्व स्तरीय परवाज के लिए भारत को अब कठोर कदम उठाने ही होंगे।

